

धर्मवीर भारती का कथा साहित्य और सृजनात्मक शक्ति की व्याख्या

Sunil Kumar^{1*} Dr. Ved Vati²

¹ Research Scholar, Singhania University, Pacheri Bari, Jhunjhunu, Rajasthan

² Supervisor, Hindi Department, Singhania University, Pacheri Bari, Jhunjhunu, Rajasthan

सार – सामान्य व्यक्ति भी सर्जक-कलाकार की तरह घटनाओं का अनुभव करता है, एकाकार होकर रोता-हँसता भी है। पर उन घटनाओं को कलात्मक रूप देने की क्षमता सामान्य व्यक्ति में नहीं है। “विशिष्ट मानवीय क्षमता में कवि दूसरों से भिन्न होता है। सृजन और भाषा-प्रयोग की क्षमता उसमें ज्यादा विकसित है।” वह क्षमता केवल कवि या कलाकार में ही है। संवेदनक्षमता और अभिव्यक्ति कुशलता की न्यूनता-अधिकता के आधार पर सर्जक को साधारण अथवा श्रेष्ठ माना जाता है।

सृजनात्मक शक्ति या प्रतिभा की व्याख्या संपूर्ण रूप से संभव नहीं है। वह अव्याख्येय है। उसकी मात्रा सब सर्जकों में समान भी नहीं है। भौतिक परिस्थिति भी उसके निर्माण में पूर्ण रूप से समर्थ नहीं होती, यद्यपि उचित परिस्थिति उसके विकास के लिए आवश्यक है।

-----X-----

प्रस्तावना

सृजन मनुष्य का सहज स्वभाव होता है। उसका प्रत्येक कार्य सृजन है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा। वह जीवन से अनुभव - सामग्रय प्राप्त करता है। यह उसके अन्तर्जगत् में प्रभाव डालता है। कलात्मक संवेदना और अभिव्यक्ति-कुशलता से संपन्न व्यक्ति अपने मन की अनुभूतियों को साहित्य, संगीत, चित्र, अभिनय इत्यादि के जरिए प्रकट करता है। सामान्य व्यक्ति भी सर्जक-कलाकार की तरह घटनाओं का अनुभव करता है, एकाकार होकर रोता-हँसता भी है। पर उन घटनाओं को कलात्मक रूप देने की क्षमता सामान्य व्यक्ति में नहीं है। “विशिष्ट मानवीय क्षमता में कवि दूसरों से भिन्न होता है। सृजन और भाषा-प्रयोग की क्षमता उसमें ज्यादा विकसित है।” वह क्षमता केवल कवि या कलाकार में ही है। संवेदनक्षमता और अभिव्यक्ति कुशलता की न्यूनता-अधिकता के आधार पर सर्जक को साधारण अथवा श्रेष्ठ माना जाता है।

सृजनात्मक शक्ति या प्रतिभा की व्याख्या संपूर्ण रूप से संभव नहीं है। वह अव्याख्येय है। उसकी मात्रा सब सर्जकों में समान भी नहीं है। भौतिक परिस्थिति भी उसके निर्माण में पूर्ण रूप से समर्थ नहीं होती, यद्यपि उचित परिस्थिति उसके विकास के लिए आवश्यक है। सृजनात्मक शक्ति शिक्षा-दीक्षा से निर्मित

होनेवाली वस्तु नहीं। पाण्डित्य और सृजनशीलता में भी बड़ा भारी संबंध नहीं है। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक जार्ज साम्पसन के मत में “अधिक पाण्डित्य और महान सृजन-शक्ति के बीच तनिक भी संबंध नहीं है। समस्त सृजनात्मक प्रतिभा एक रहस्य है और बिलकुल व्याख्यातीत भी है।”

शिक्षा

पिता की मृत्यु के उपरांत भारती ने अपने मामा अभयकृष्ण जौहरी की सहायता से पढ़ाई जारी रखी। सन् 1945 में उन्होंने बी.ए. परीक्षा पास की और सन् 1947 में एम.ए. भी। बी.ए. परीक्षा में सर्वाधिक अंक पाने पर उन्हें चिन्तामणि घोष मण्डल पुरस्कार प्राप्त हुआ। एम.ए. हिन्दी परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के उपरांत भारती ने डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में सिद्ध साहित्य पर अनुसंधान किया और पी.एच.डी. उपाधि प्राप्त की। आर्थिक विषमता और स्वावलंबी बनने की इच्छा से भारती ने बी.ए. की पढ़ाई के समय से ट्यूशन की थीं। डॉ. प्रभात से हुई भेंटवार्ता में भारती ने अपने अध्ययनकाल का स्मरण किया है- “मेरा बचपन बड़ी गरीबी और संघर्ष में बीता। पिता ये नहीं और हम लोगों के पास आमदनी का कोई विशेष जरिया नहीं था। जैसे-तैसे पढ़ाई चल रही थी- कुछ वजीफों के सहारे, कुछ ट्यूशनों के सहारे।

मुझे बहुत दिलचस्पी थी पढ़ने में। अधिक से अधिक, कितना कहाँ से क्या पढ़ सकूँ और वह भी पढ़ना कोर्स के बाहर की चीजें। कोर्स की चीजें सिर्फ उतनी पढ़ता था, जितना पढ़ना परीक्षा के लिए आवश्यक था और जिसमें कि प्रथम श्रेणी के नम्बर मिल जाए।

उद्योग-धंधा

भारती ने एम.ए. की पढ़ाई का खर्च पद्मकांत मालवीय द्वारा संपादित “अभ्युदय” नामक दैनिक पत्र में अर्द्धकालीन पत्रकार का काम करके निकाला। सन् 1948 में श्री इलाचन्द्र जोशी के साप्ताहिक पत्र “संगम” में उन्होंने सहायक संपादक के रूप में कार्य किया। फिर लक्ष्मीकान्त वर्मा का सहयोग लेकर इलाहाबाद से “निकष” के तीन अंक निकाले। तदुपरांत रघुवंश, साही आदि के साथ मिलकर आलोचना त्रैमासिक का संपादन भार संभाला और साहित्य के मानमूर्यों को लेकर कई बहसों का सूत्रपात किया। 1950 में उन्हें प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक का पद मिल गया। वे 1960 तक अध्यापन कार्य में संलग्न रहे। भारती के संबन्ध में यह दस वर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनका सृजनात्मक वैभव इस अवधि में ही अधिकतर निखर उठा है। उनकी सारी महत्वपूर्ण रचनाएँ इस काल में प्रकाशित हुईं। 1960 में भारती ने बंबई से प्रकाशित होने वाले “धर्मयुग” साप्ताहिक का संपादन-भार संभाला और उनके संपादकत्व में 6 मार्च 1960 पर “धर्मयुग” का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ। इसके बाद उनका साहित्यिक लेखन रुका-सा है। भारती ने इसका कारण बताया है कि “धर्मयुग” का काम करते ही रात के 8-9 बजे जाते हैं, फिर कुछ लिखने का हौसला ही नहीं रहता। श्री विनय के साथ हुई बातचीत में भारती ने विस्तृत रूप से इसका समाधान दिया है- ‘इसके पीछे मुख्य स्थिति यह है कि मेरे लिए अच्छे मनुष्य, सही मनुष्य और ईमानदान मनुष्य की तरह जीना मुख्य चीज़ है। साहित्य उसका एक अतिरिक्त फल हो सकता है, लेकिन साहित्यिक ही रहना या साहित्यिकता के ही माध्यम से अपने को उपलब्ध करना, यह मेरा कभी रहा नहीं। दूसरी बात परिमाण की दृष्टि से निःसंदेह पत्रकारिता में आने के बाद समय-अवकाश की थोड़ी कमी रही। लेकिन जो सबसे बड़ा कारण था, वह कुछ जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ थीं। उस यंत्रणा में बहुत अकेले छूट जाने पर बहुत दिनों तक मुझे अपने को संभालने और फिर से बनाने में ज्यादा समय लगा’ 29 नवम्बर 1987 के अंक के साथ भारती “धर्मयुग” के अपने दायित्व से मुक्त हो गये हैं। अब वे “धर्मयुग” में ‘शब्दिता’ शीर्षक कालम् में समकालीन घटनाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते रहते हैं।

विचारधारा

भारती ने किशोरावस्था में सामाजिक परिवर्तन के लिए मार्क्सवाद की भूमिका को महत्वपूर्ण माना था, लेकिन वे लिखते हैं - मार्क्सवाद का काफी अवगाहन करने के बाद मुझे लगा कि बहुत से प्रश्न हैं जो अनुत्तरित छूट जाते हैं। उनके विषय में मार्क्स कोई जवाब नहीं दे पाता। मैं एक बार भारतीय दर्शन की ओर लौटा। तब मैंने पाया कि हमारे यहाँ मध्यकालीन संत वैष्णव भक्त, सूफियों की विचारधाराएँ आयी है। इनमें हमारे अनेक प्रश्नों का उत्तर है तो मार्क्सवाद नहीं दे सकता। भारतीय दर्शनों में उपनिषद् उन्हें बहुत भाते थे। उनकी दृष्टि में “उपनिषदों में गहराई है और आत्मचिन्तन को, आत्मोपलब्धि को सामाजिक चिन्तन और सामाजिक उपलब्धि से जोड़ने के बीच उपनिषदों में हैं और वे ही बाद में गीता में प्रस्फुटित हुए।

पूर्णता की तलाश

भारती के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है पूर्णत्व की खोज। उन्हीं के शब्दों में - “मैं इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जीता हुआ एक सामान्य मनुष्य हूँ और मैं अपना भविष्य जानना चाहता हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि मेरी अपनी नियति क्या है। मैं एक सार्थक मनुष्य हूँ, अपना अर्थ खोजता हुआ, अपनी पद्धति खोजता हुआ, अपनी मर्यादा खोजता हुआ। पूर्णता की सबसे बड़ी शर्त आत्म-साक्षात्कार है। मानवमूर्यों में अटल आस्था ही इसका मार्ग है। बचपन की परिस्थितियों के दबाव से भारती ने मनुष्य के रूप में अपने अस्तित्व और सार्थकता की खोज शुरू की। वे लिखते हैं - “मेरे माँ-पिता बचपन से ही कहा करते थे कि ये लड़का निरा निकम्मा और फालतु है। मेरे भाई-बहन भी कहते कि मैं अपदार्थ हूँ, मेरा भविष्य अन्धकारमय है, स्कूल के छात्र-शिक्षक भी यही कहते, जब यूनिवर्सिटी में गया, वही-वही बातें, वही लांछन। जब एम.ए. पास किया तो यह जानने की तीखी चाह जगी मन में कि मैं कोन हूँ, क्या हूँ, अपने को जानने की अनहद कोशिश की मैंने। इस खोज के परिणामस्वरूप उनकी समस्त कृतियाँ मूल्यात्मक बन पड़ी हैं।

भारती की दो विशेषताएँ हैं पढ़ाई और घुमक्कड़ी। इनमें वे विशेष रुचि रखते हैं। उन्होंने लिखा है - “जानने की प्रक्रिया में जीने और जीने की प्रक्रिया में जानने वाला मिजाज जिन लोगों का है उनमें मैं अपने को पाता हूँ। पढ़ाई से वे लेखन में सिद्धहस्त बन गये। इसीलिए नपे-तुले शब्दों के प्रयोग में भी भारती का अद्वितीय स्थान है। यह विशेषता उनकी प्रायः सभी रचनाओं में दिखाई पड़ती है। भारती के घूमने की आदत

का मज़ाक उड़ाते हुए लक्ष्मीरायण लाल ने कहा है कि “आप उन्हें कमरे में बैठाइए, वह दस-पन्द्रह मिनट में ही आपके कमरे में टहलने लगेंगे” भारती की कुछ रचनाओं के पात्रों को भी घूमने का शौक होता है। चाँद और टूटे हुए लोग का राजेश इसका नमूना है। भारती ने इंग्लैंड, जर्मनी, इंडोनेशिया, बंगलादेश इत्यादि देशों की यात्रा की है। जिन-जिन जगहों की उन्होंने परिक्रमा की है उनका अच्छा विवरण भी प्रस्तुत किया है। ये विवरण हिन्दी साहित्य भण्डार को संपन्न बनाने में सक्षम हैं।

डॉ. धर्मवीर भारती प्रतिभा संपन्न कवि, कथाकार, विचारक एवं गद्यकार के रूप में विख्यात हैं। उन्होंने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं पर सफलता हासिल की है, तो भी वे मूलतः कवि हैं। कविता के माध्यम से भारती ने आज की संघर्षपूर्ण जिन्दगी को चित्रित किया है और जीवन के अर्थ को समझाने का प्रयास किया है। भारती और कविता के संबंध को सूचित करते हुए श्री अजेय लिखते हैं – “कविता भारती के लिए शान्ति की छाया और विश्वास की आवाज़ रही है।

कविता

धर्मवीर भारती की काव्य-यात्रा मुख्यतः दूसरा सप्तक से प्रारंभ हुई। उनकी प्रारंभिक कविताएँ छायावाद की सी थोड़ी मांसलता या उन्मुक्त रूपोपासना से युक्त होने पर भी अभिव्यंजना प्रणाली नवीन हैं। भारती के काव्य-ग्रन्थ हैं – “ठंडा लोहा”, “अंधायुग”, “कनुप्रिया” और “सात गीत वर्ष”। इनके अतिरिक्त “देशान्तर” नाम से उन्होंने कुछ विदेशी कविताओं का हिन्दी में अनुवाद भी किया है। उनकी कविताओं में रूपासक्ति, प्रेम की स्थूल और उदात्त अभिव्यक्ति, प्रकृति की आकर्षक छवियाँ आदि के साथ युग-सत्य और समसामयिक चिंतन भी दिखाई पड़ते हैं।

ठंडा लोहा

धर्मवीर भारती की अनेक स्फुट कविताएँ “ठंडा लोहा” और “सात गीत वर्ष” नामक संकलनों में प्रकाशित हुई हैं। “ठंडा लोहा” में सन् 1946 से 1952 तक की चुनी हुई रचनाएँ आती हैं। प्रस्तुत संकलन के संबन्ध में भारती ने लिखा है कि “इस संग्रह में दी गयी कविताएँ मेरे पिछले छह वर्षों की रचनाओं में से चुनी गयी हैं और चूंकि यह समय अधिक मानसिक उथल-पूथल का रहा, अतः इन कविताओं में स्तब्ध भावभूमि, शिल्प और टोन की काफी विविधता मिलेगी। एकसूत्रता केवल इतनी है कि ये सभी मेरी कविताएँ हैं, मेरे विकास और परिपक्वता के साथ उनके स्वर बदलते गये हैं, पर आप ज़रा ध्यान से देखेंगे तो सभी में मेरी आवाज़ पहचानी-सी लगती है।

प्रस्तुत संकलन का नामकरण इसकी पहली कविता के नाम पर हुआ है। 39 कविताओं के इस संकलन में अधिकांश कविताएँ रोमांटिक हैं। बाहर की व्यापक सचाई के स्थान पर कवि की निजी आंतरिक पीड़ा की अभिव्यक्ति इसमें अधिक हुई है। इसका प्रमुख स्वर प्रेम का है। युवावस्था के प्रेम में दिखायी पड़ने वाली गहरी भावुकता तीव्र आवेग और अनंत स्वप्न का अंकन इसमें है। समाज के बीच आ जाने पर वे कोमल भावनाएँ कुचल दी जाती हैं और जीवन के सपने चकनाचुर हो जाते हैं। केवल हताश-भावना शेष रह जाती है। यह समझते हुए कवि कहता है-

“मेरी दुखती हुई रगों पर ठंडा लोहा।

मेरी स्वप्न भरी पलकों पर

मेरे गीत भरे होठों पर

मेरी दर्द भरी आत्मा पर

स्वप्न नहीं अब

गीत नहीं अब

दर्द नहीं अब

एक पर्त ठंडे लोहे की।

इस संकलन की एक और विशेषता इसकी मिश्र भावना है। अपनी प्रेमिका के प्रति इनकी दृष्टि वासना की होती है और पवित्रता की भी। प्रणय और मर्यादा, उत्साह और उदासी जैसी मिश्र भावनाओं के सम्मिलित योग से इस संकलन को एक नया रूप मिला है।

“ठंडा लोहा” संकलन की कविताओं की अभिव्यक्ति में कहीं भी कोई उलझाव नहीं है। उनमें एक आन्तरिक लय है। उनकी गति कहीं खंडित नहीं होता। इनमें कुछ कविताएँ संवादात्मक हैं और बातचीत की नाटकीय शैली का परिचय देती हैं। जैसे डोले का गीत, कवि और अनजान पगध्वनियाँ, दो आवाज़ें, कविता की मौत आदि। सौन्दर्य चित्रण, बिंब निर्माण, नये आकर्षक उपमानों के प्रयोग और स्निग्ध कोमल मांसल शब्दावली के प्रयोग में भारती सिद्धहस्त हैं। भाषा का सहज प्रवाह उनकी अभिव्यक्ति का प्रमुख गुण है। उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्दों के प्रयोग से कविताओं के सौन्दर्य में काफी वृद्धि हुई है।

“ठंडा लोहा” संकलन पाठकों को आकृष्ट करने में सचमुच सफल हुआ है।

अन्धायुग

स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में ऐसी अनेक कृतियाँ आयी हैं जिनका आधार प्राचीन होकर भी ध्येय वर्तमान का है। इन कृतियों के पौराणिक प्रसंग, ऐतिहासिक संदर्भ और पात्र वर्तमान युग में आकर भी अपनी अस्मिता बनाये हुए हैं। फलस्वरूप अतीत वर्तमान में साँस लेने लगते हैं। ऐसी कृतियों में अन्धायुग का उल्लेखनीय स्थान है।

“अन्धायुग” एक प्रसिद्ध गीति-नाट्य है जिसे दृश्य-काव्य, काव्य-रूपक, नाट्य-रूपक, भाव-नाट्य इत्यादि कई नामों से अभिहित किया जाता है। इसमें धर्मवीर भारती ने महाभारत के उत्तरार्द्ध की कथा को आधार बनाकर समकालीन बोध को वाणी दी है। इसका घटनाकाल महाभारत युद्ध के अठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक फैला हुआ है। प्रारंभ से ही कवि यह बताना चाहता है कि महाभारत युद्ध अनीति, अमर्यादा और अदूरदर्शिता का फल है। स्वार्थ से ग्रस्त पाण्डव और कौरव अन्ध हो गये थे। युद्ध के भीषण ताण्डव के परिणाम स्वरूप जो विनाश तथा विघटन हुआ उसके लिए धृतराष्ट्र का अन्धापन बहुत सीमा तक उत्तरदायी है। पर सारे विध्वंसों का कारण केवल धृतराष्ट्र और उनकी संतान ही नहीं पांडव भी समान रूप से उत्तरदायी हैं-

“दोनों ही पक्षों में विवेक ही हारा

दोनों ही पक्षों में जीता अन्धापन।”

कवि ने महाभारत युद्ध के माध्यम से द्वितीय विश्वयुद्ध की और संकेत किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत विश्व के व्याप्त अनास्था, अविश्वास और मूल्यविघटन की ओर संकेत करना कवि का अभीष्ट रहा है। साथ ही अन्धकारमय भविष्य के प्रति चेतावनी देना भी। इसी से अन्धायुग अन्धों की कथा होकर भी ज्योति की कथा बन गयी है। भारती ने यह स्पष्ट किया है- “या कथा ज्योति की है अन्धों के माध्यम से।”

“अन्धायुग” में विगत को आगत से जोड़कर अनागत की ओर संकेत किया गया है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान के अनुसार “भारती ने “अन्धायुग” में कौरव नगरी को उसकी उजड़ती गिरती दशा में उसी तरह पकड़ने की कोशिश की है जिस तरह इलियट ने वेस्टलैंड में लंदन को और जॉयस ने युलिसेस में डबलिन को। इनकी स्थितियाँ कौरव-नगरी की स्थितियों से अलग होकर भी

एक दृष्टि से समान हैं कि इनमें संबंध टूट रहे हैं, इनसान की हस्ती खतरे में पड़ चुकी है, आस्था टूट चुकी है।

“अन्धायुग” पाँच अंकों में विभाजित है - कौरव नगरी, पशु का उदय, अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य, गांधारी का शाप और विजय एक क्रमिक आत्महत्या। अंक परिवर्तन के साथ कथागायन की योजना है। कथानक की जो धटनाएँ मंच पर दिखाई नहीं जाती, उनकी सूचना देने पर वातावरण की मार्मिकता को और गहन बनाने के लिए कथा-गायन की पदवृत्ति अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है। आरंभ से लेकर अंत तक कथा में संगठन है। कोई भी प्रसंग मूल चेतना से कटा हुआ नहीं है। इसके प्रायः सभी पात्र पाण्डव-कौरव कुल से सम्बन्धित हैं। पात्रों के मिथकीय होने पर भी उनकी अस्मिता आधुनिक युग की है। “अन्धायुग” की भाषा गद्य के अधिक निकट है। क्योंकि इसमें विचारों की प्रधानता है।

इस रचना में आधुनिक युगबोध को मिथकों के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। अन्धे चरित्र या अन्धी युग-दृष्टि को विवृत करना इसका प्रमुख ध्येय है। इसी से एक श्रेष्ठ कृति बन गयी है।

सात गीत वर्ष

धर्मवीर भारती का दूसरा कविता संकलन है सात गीत वर्ष। इसमें सन् 1951 से 1958 तक सात वर्षों की कविताओं का संकलन किया गया है। इस आधार पर संकलन का नामकरण हुआ है। इसमें 51 कविताएँ संकलित हैं। इसकी अधिकांश कविताएँ “ठंडा लोहा” संकलन की कविताओं के समान प्रेम भावना से संबन्धित हैं। इस प्रेम-भावना में भी एक प्रकार के विरोधी तत्व या मिश्र भाव पाये जाते हैं। तृष्णा और स्मृति, रूपासक्ति और उदासी, मांसलता और दर्द आदि विरोधी भावनाओं के कारण प्रेमी कभी भी ठीक से न सुख का अनुभव कर पाता है और न दुख का भी। एक मिश्रित रस इस संकलन की कविताओं की एक विशेषता है-

“हाथ में जब हाथ कोई आएगा

उष्ण ममता नहीं केवल एक खालीपन उसे छू जाएगा

बाँह में जब जिस्म कोई आएगा

बीच में तुमको सिसकता पायेगा

प्यार यह क्या अब कभी भी स्वयं को दुहरायेगा

नही ! शायद नहीं !

“सात गीत वर्ष” की सबसे महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं – ‘प्रमथ्यु गाथा’, बाणभट्ट, बृहन्नला और टूटा पहिया। ये कविताएँ जनवादी भूमिका से संबन्धित हैं। ‘प्रमथ्यु गाथा’ एक लंबी कविता है जिसका आधार एक पौराणिक युनानी गाथा है। इसमें कवि का उद्देश्य यह रहा है कि ज्योति चाहने वालों को दण्ड का भय छोड़कर प्रमथ्यु की तरह साहस के साथ आगे आना चाहिए।

प्रयोगवादी आन्दोलन से संबन्धित होने के कारण भारती ने अपनी कविताओं में उन रचनाकारों पर तीखा व्यंग्य किया है जिनका शब्द राजसत्ता और नगर सेठों के सामने बिक गया है। बाणभट्ट और बृहन्नला ऐसी कविताएँ हैं। “टूटा पहिया” के माध्यम से भारती ने लघुमानव का महत्व उदघोषित किया है। चक्रव्यूह में फंसे अभिमन्यु ने रथ के टूटे पहिये से ब्रह्मयज्ञ से लोहा लिया था। उसी प्रकार तुच्छ और तिरस्कृत समझे जाने वाले भी सच्चाई का समर्थन कर सकते हैं।

प्रस्तुत संकलन में शुद्ध प्रकृति चित्रण की कविताएँ भी हैं। “सांझ के बादल” और “एक छवि” ऐसी ही कविताएँ हैं। इन कविताओं में कवि का हर्षोल्लास प्रकट हुआ है।

“सात गीत वर्ष” का अभिव्यंजना-पक्ष मनोरम है। इसमें कथ्य के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया गया है। जिसमें मर्म को छूने की शक्ति है। अभिव्यक्ति की सरसता और सहजता इस संकलन की कविताओं को आकर्षक बनाती हैं। नये उपमान यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं और सूक्ष्म भावनाओं को सफलतापूर्वक अंकित किया गया है। सचमुच सात गीत वर्ष, ठंडा लोहा” संकलन से एक कदम आगे है।

कनुप्रिया

“कनुप्रिया” का लेखन “अंधायुग” के लेखन के चार वर्ष बाद 1959 हुआ। इसकी भूमिका में भारती ने लिखा है कि “अंधायुग” की समस्या के ही कुछ विशिष्ट संदर्भ “कनुप्रिया” में उद्घाटित हुए हैं। उन्हीं के शब्दों में – “लेखक के पिछले दृश्य-काव्य में एक बिन्दु से इस समस्या पर दृष्टिपात किया गया था चुका है - गाँधारी, युयुत्सु और अश्वत्थामा के माध्यम से। कनुप्रिया उनसे सर्वथा पृथक-बिलकुल दूसरे बिन्दु से चलकर उसी समस्या तक पहुँचती है, उसी प्रक्रिया को दूसरे भावस्तर से देखती है और अपने अनजान में ही प्रश्न के ऐसे संदर्भ उद्घाटित करती है जो पूरक सिद्ध होते हैं। जब इतिहास की दुर्दान्त शक्तियाँ मनुष्य को विवश कर जाती हैं तब व्यक्ति की रागात्मकता ही सांत्वना प्रदान करने में समर्थ होती है।

“अंधायुग” से असफल इतिहास की बात कही गयी है और “कनुप्रिया” में यही तथ्य भावाकुल तन्मयता के बीच उभरकर सामने आता है। “अंधायुग” में बौद्धिक धरातल पर गहरे तर्क और विश्लेषण की दृष्टि से अन्धापन, प्रतिरोध, हिंसा और कुंठा आदि संदर्भ उभारे गये हैं और “कनुप्रिया” में कृष्ण के गहरे प्यार में डूबी राधा अनजाने ही इन संदर्भों को प्रश्नों के माध्यम से विचारणीय बना देती है।

साहित्य की समीक्षा

जयदेव तनेजा (2012) धर्मवीर भारती की काव्य-यात्रा मुख्यतः दूसरा सप्तक से प्रारंभ हुई। उनकी प्रारंभिक कविताएँ छायावाद की सी थोड़ी मांसलता या उन्मुक्त रूपोपासना से युक्त होने पर भी अभिव्यंजना प्रणाली नवीन हैं। भारती के काव्य-ग्रन्थ हैं – “ठंडा लोहा”, “अंधायुग”, “कनुप्रिया” और “सात गीत वर्ष”। इनके अतिरिक्त “देशान्तर” नाम से उन्होंने कुछ विदेशी कविताओं का हिन्दी में अनुवाद भी किया है। उनकी कविताओं में रूपासक्ति, प्रेम की स्थूल और उदात्त अभिव्यक्ति, प्रकृति की आकर्षक छवियाँ आदि के साथ युग-सत्य और समसामयिक चिंतन भी दिखाई पड़ते हैं।

डॉ. रमेशचन्द्र लवानिय (2014) सन् 1969 ई. में प्रकाशित भारती का निबन्ध संग्रह है “पश्चन्ती”। सत्रह निबन्धों के इस संकलन को ‘आत्मकथ्य’, ‘व्यक्तित्व और कृतित्व’, ‘सर्वथा निजी पश्चन्ती इतिहास, सर्वेक्षण, युगबोध, चिकनी सतहें बहते आन्दोलन जैसे सात उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है। इनमें लेखक ने विविध समस्याओं, जैसे भाषा संबंधी, साहित्य संबंधी और राष्ट्रीयता से संबन्धित, का विश्लेषण किया है।

‘आत्मकथ्य’ शीर्षक के अन्तर्गत दो निबन्ध हैं – ‘नवलेखन माध्यम में कुछ स्नैपशॉट्स और एक घुणा अनेक आयाम’। भारती के ही शब्दों में इनमें “मैं ने अमुक कृति क्यों लिखी कब लिखी उसके द्वारा नवलेखन का कैन-सा पक्ष उभरा, क्या उसने कोई मान स्थापित किये ये सवाल दरपेश हैं। व्यक्तित्व और कृतित्व शीर्षक के अन्तर्गत आने वाले तीन निबन्धों में प्रथम ‘जलौधमैग्ना सचराचरा धरा’ तो हजारी प्रसाद द्दिवेदी के ‘बाणभट्ट की आत्मकथा’ उपन्यास का विश्लेषण है। दूसरा निबन्ध ‘मध्यवर्ग का सैलाब और बूढ़ा मछेरा’ अमृतलाल नागर की रचना ‘अमृत और विष’ ‘मनुष्य की क्षुद्रताओं, कमजोरियों, असंगतियों, लोभ, लालसा और आवेश की वृत्तियों का बहुत खुला और साहसपूर्ण चित्रण करने वाले कहानीकार मोपासाँ की कहानी ‘धागे का टुकड़ा’ को पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है।

अशोक त्रिपाठी (2014) इन निबन्धों में भारती एक समीक्षक से भी अधिक एक सहृदय पाठक के रूप में हमारे सामने आते हैं। क्योंकि “बाणभट्ट की आत्मकथा” जैसी कृतियों की समीक्षा करते समय भारती द्विवेदीजी के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने में व्यग्र है। लेकिन यह तो भारती के व्यक्तित्व की ऊँचाई का निदर्शन है कि हिन्दी के समर्थक और रोमानी साहित्यकार होने के बावजूद मोपासाँ जैसे यथार्थवादी लेखक को भी वे मान्यता देते हैं।

धनजय वर्मा (2014) ‘पश्यन्ती’ के आत्मकथ्य उपशीर्षक के अन्तर्गत आनेवाले निबन्धों के संबन्ध में धनजय वर्मा का कथन है कि “नवलेखन के संबन्ध में भी भारती का चिन्तन ‘पश्यन्ती’ केवल कुछ परिस्थितियों को स्वीकार करके चलता है, उनके भीतर से उभरने वाले संबन्धों को, उन संबन्धों के आर्थिक और भौतिक आधार और उसकी दृवदवात्मकता को नजर अन्दाज कर जाता है।” फिर भी पश्यन्ती का आत्मकथ्य भारती के रचना-संसार की परिधिरेखा को स्पष्ट करने के लिहाज से महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष

धर्मवीर भारती के व्यक्तित्व की अनेक परतें होती हैं। एक ओर उनमें आर्यसमाजी संस्कारों का प्रभाव होता है तो दूसरी ओर अतरसुड़िया मुहल्ले के जीवन का। रोमांस और श्रृंगार-प्रियता उनके रक्त में ही लीन हैं। इसी से उनकी यथार्थपरक रचनाएँ भी रोमानियत से अनुप्राणित हैं। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने लिखा है कि “उनके व्यक्तित्व का केन्द्रीय तत्व बौद्धिकता नहीं रागवेष्टिल सौन्दर्य है, जिसे उन्होंने पहचाना और बौद्धिकता से आक्रांत युग में साहसपूर्वक स्वीकारा भी। परन्तु वे जिस युग-परिवेश में थे, उसकी कुछ दूसरी अपेक्षाएँ भी थीं, जिनकी उपेक्षा उन जैसा सजग रचनाकार नहीं कर सकता था।” भारती साहित्य को राजनैतिक तत्वों और वादों से मुक्त करने के पक्ष में हैं। वे साहित्यकार को स्वतंत्रता और मानवमूल्यों की महत्ता पर बल देते हैं। विभिन्न संस्थाओं और प्रतिष्ठानों से संबद्ध भारती व्यवहार कुशल, स्वस्थ चिंतक एवं दक्ष प्रशासक भी हैं। कई राज्य सरकारों, साहित्य अकादमियों और स्वतंत्र साहित्य प्रतिष्ठानों ने अनेक पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित किया है। भारत सरकार ने उन्हें 1972 में “पद्मश्री” पुरस्कार से सम्मानित किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारती संगम से सागर - सं. पंडित सुरेन्द्र तिवारी, सुरिन्द्र सिंह राधा कृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली पहला संस्करण, 1987.
2. भारती का काव्य रघुवंश दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली-32, प्रथम संस्करण 1980.
3. भारती की काव्य-भाषा डॉ. पाण्डेय शशिभूषण “शीतांशु” नटराज पब्लिशिंग हाऊस, करनाल प्रथम संस्करण 1985.
4. मेरा हमदम मेरा दोस्त सं. कमलेश्वर नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दरियागंज, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण 1975.
5. रेखाएँ और चित्र उपेन्द्रनाथ अशक नीलाभ प्रकाशन गृह, खूसरो बाग रोड़, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1955.
6. लंबी कविताओं का रचनाविधान – सं. नरेन्द्र मोहन दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1977.
7. विवके के रंग सं. देवीशंकर अवस्थी भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-5, प्रथम संस्करण 1965.
8. समकालीन हिन्दी कविता डॉ. अशोक त्रिपाठी शारदा सदन, जीरों रोड़, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण 1981.
9. समसामयिक हिन्दी नाटकों में जयदेव तनेजा चरित्र-सृष्टि सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-6 प्रथम संस्करण 1971.
10. साहित्य और आधुनिक युगबोध देवेन्द्र इस्सर जयकृष्ण अग्रवाल, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर प्रथम संस्करण, 1973.
11. सिलसिला मधुरेश प्रकाशन संस्थान, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1979.

12. हस्तक्षेप धनजय वर्मा विद्या प्रकाशन मन्दिर,
दरियागंज, दिल्ली संस्करण, 1979.

Corresponding Author

Sunil Kumar*

Research Scholar, Singhania University, Pacheri
Bari, Jhunjhunu, Rajasthan